

प्रवचन-२

गाथा-२

बुधवार, ज्येष्ठ शुक्ल ६, दिनांक १०-०६-१९७०

नोट - इस प्रवचन में जितना समझ में न आया हो, वह नहीं लिखा है। मुमुक्षुओं को सुनने में ख्याल आवे तो रिक्तस्थान भर लेने की प्रार्थना है।

शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, ऐसा ही उसका शुद्ध ज्ञान और आनन्द की (अवस्था प्रगट हो), उसका नाम शुद्ध चेतनाधर्म कहने में आता है। कल तो यह आ गया था।कहते हैं चार प्रकार कहे न ? भाई ! प्रथम तो वस्तुस्वभाव, वह धर्म। अर्थात् क्या ? वस्तुस्वभाव, वह धर्म। **वत्थु सहाओ धम्मो**। यह आता है न ? स्वामी कार्तिकेय में। अर्थात् क्या ? वस्तु का स्वभाव वह धर्म (अर्थात् क्या) ? यह आत्मा वस्तु है, उसका ज्ञान, आनन्द, आदि श्रद्धा शील शुद्धभावरूप भाव है, त्रिकाल। आत्मा वस्तु है, उसका त्रिकाली शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, आनन्द, शान्ति इत्यादि शुद्धभाव है, उस शुद्धभाव का शुद्धरूप परिणमन होना। समझ में आया ? वह वस्तु का स्वभाव।

वस्तु-आत्मा। उसका स्व-भाव कायमी ज्ञान, आनन्द और शान्ति वीतरागभाव, उसका शुद्धरूप से परिणमना, शुद्धभाव है, ऐसा उसका परिणमना, उस प्रकार से होना। द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि के सभी गुणों का शुद्धपरिणमन होना, उसका नाम वस्तुस्वभाव शुद्धचेतना परिणमन धर्म कहते हैं। सेठी ! समझ में आया या नहीं ? कान्तिभाई !

और वह चेतना। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप में-अन्तर में चेतते। उसका आनन्दस्वरूप है। चैतन्य आनन्दमूर्ति आत्मा है। आनन्द का स्थान, वह आत्मा है। उस आनन्द का धाम स्वभाव, वह शुद्ध है। उसका आश्रय लेकर शुद्धरूप से वर्तमान में व्यक्तपने-प्रगटरूप से शुद्ध परिणमन का होना, उसे यहाँ चेतनापरिणाम धर्म कहने में आता है। वह 'चेतना सर्व विकारों से रहित...' वह चेतना की अस्ति से बात की। अब नास्ति से (कहते हैं) उसमें दया, दान, व्रतादि के विकल्प जो विकार है, उनसे रहित वह चेतना है। उसका नाम वस्तु के स्वभाव का धर्म कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकाररहित में से निकाला है। कल बोले नहीं थे ?दया,

दान, व्रत के परिणाम पृथक् हैं, इसलिए पृथक् हो सकते हैं। यह तुम्हारा बोलता है। समझ में आया ? ...तैयार तो हो थोड़ा-थोड़ा। कुछ (कान में) तो पड़े। अभी छोटी उम्र में से ऐसी बात कान में पड़े तो भाग्यशाली है। लालचन्दभाई नहीं कहते ? क्या कहलाता है जामनगरवाला लालन। लालन कहते थे वहाँ,हमें इतनी उम्र में मिलता है और तुम्हें छोटी उम्र में मिला, ऐसा कहते थे। चातुर्मास था न ? ...वहाँ थे। हमें इतनी उम्र में यह बात मिली, पहले हमें नहीं मिली थी। छोटे-छोटे सब थे। तुम्हें तो इतनी छोटी उम्र में मिली। तुम भाग्यशाली ! लालन थे, नहीं ?वहाँ घर था।

कहते हैं, वस्तु का स्वभाव, उसे भगवान ने धर्म कहा है। अर्थात् क्या ? वस्तु अर्थात् आत्मा। उसमें बसी हुई शक्तियाँ अर्थात् शुद्धभाव। त्रिकाली। ज्ञान, आनन्द वीतरागता, स्वच्छता, प्रभुता ऐसे जो अनन्त गुण। वस्तु शक्तिवान और यह सब शक्तियाँ शुद्धभाव, वही वस्तु का धर्म है, परन्तु वह धर्म है, वह प्रगटरूप से कब हो ? ऐसा कहते हैं। वह तो त्रिकाली है। उस त्रिकाली धर्म का अन्तर आश्रय लेकर जो शुद्धरूप से दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि में अनन्त गुण का शुद्ध परिणमन होता है, उस शुद्ध चेतना को धर्म कहने में आता है। यह जैनधर्म। यह जैनधर्म है।

वह चेतना सर्व विकारों से रहित.. इसमें आ गया। ये जितने विकल्प हैं। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि विकल्प, वह विकार है। उस विकाररहित और चेतना के स्वभाव सहित का परिणमना, ऐसी चेतना को जैनधर्म अथवा मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया ? मन्दिर, यात्रा वह तो उसके कारण हो। उसमें लक्ष्य जाये, उसे शुभभाव कहते हैं। शुभभाव हो। शुभभाव व्यवहारधर्म कहने में आता है। वह भी निश्चयधर्म होवे तो (कहने में आता है)। समझ में आया ?

आत्मा वस्तु है, शुद्धभाव स्वभावभाव है। वस्तु है, वह स्वभाववाली है और भाव स्वभाव है वह शक्तियाँ, स्वभाव, सत्व, गुण वह त्रिकाल शुद्ध है। उस शुद्ध का गुण और द्रव्य, उसका अन्तर आश्रय लेकर परिणाम में, वर्तमान पर्याय में शक्ति में से व्यक्तता शुद्धपरिणमन हो, उसे चेतना शुद्ध परिणाम धर्म कहते हैं। यह तो सहजता से हो ऐसा है, समझ में आये ऐसा है। सुजानमलजी ! यह तो सादी भाषा है। इसमें कोई संस्कृत और व्याकरण पढ़ा हो, ऐसा कुछ नहीं है। यह धर्म। जैनधर्म अनादि का है। देखो ! अमुक

आधार से है, परन्तु वह धर्म है कहाँ, वह तो कहे ? पर का आधार देते हैं, आत्मा का नहीं। यहाँ तो जैनधर्म आत्मा में है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वे ऐसा कहते हैं, अहो ! जैनधर्म सूक्ष्म है... परन्तु जैनधर्म अर्थात् क्या ? वह जैनधर्म पर्यायरूप प्रगटे, उसे धर्म कहते हैं, वह प्रगटे परन्तु वह जो प्रगटता है, वह सब शक्तिरूप गुण है और गुण का धारक एकरूप द्रव्य है। ऐसा निर्णय करे, उसके आश्रय से शुद्ध होता है। समझ में आया ?

वस्तु, ऐसा कहा न ? वस्तुस्वभाव। वस्तु आत्मा है, वह एक है। वस्तु, उसका स्वभाव अर्थात् भाव। ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त-अनन्त गुण, यह उसका भाव। यह धर्म अर्थात् उसका त्रिकाली तो धर्म है परन्तु जब पर्याय में उसका लक्ष्य करके प्रगट हो, तब उसे शुद्ध का भान हुआ, तब वह शुद्ध कहने में आता है। शुद्ध की परिणति हुई, तब उसे त्रिकाल शुद्धभाव है, यह उसका स्वभाव है, ऐसी प्रतीति और अनुभव में आया, उस परिणाम को धर्म कहते हैं। समझ में आया ? यह एक बात हुई। अब दूसरी। दूसरा धर्म। कहते हैं कि यह की यह बात, परन्तु दूसरे प्रकार से।

और, बहुरी अर्थात् अथवा। ऐसा। अथवा। उत्तम क्षमादिक दश प्रकार कहने का.. उत्तम क्षमा दशलक्षणी पर्व में आती है न ? उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, सरलता, निर्लोभता, ब्रह्मचर्य आदि उत्तम धर्मदशा। यह उत्तम क्षमा आदि दश धर्म। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा क्रोधादि कषायरूप न होकर.. देखो ! यह वापस यहाँ लिया। क्रोध, मान, माया, आदि विकल्परूप न होवे। अपने स्वभाव में स्थिर हो, वही धर्म है,.. दूसरे प्रकार से कहा, उसके साथ मिलते हैं। वस्तु तो एक ही है। समझ में आया ?

आत्मा में क्षमा आदि चारित्रगुण तो त्रिकाल है। उस त्रिकाल गुण की परिणति होकर जो उत्तम क्षमादि पर्याय में आवे, वह पर्याय-परिणति निर्मल है और क्रोधादि के विकार से रहित है। यह तो नास्ति से समझाया। उसमें जब ऐसा कहा, चेतनाधर्म है, वह सर्व विकार से रहित है। यहाँ उत्तम क्षमादि कहा, इसलिए उसके सामने क्रोधादि से रहित है, ऐसा कहकर उत्तम क्षमादि परिणति जीव का भाव—चेतना, उसे धर्म कहते हैं। उत्तम क्षमा धर्म भी यही कहा। दूसरा धर्म कहीं बाहर की क्षमा की, ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

उत्तम क्षमादिक। उसमें आया, आदि दश प्रकार कहने से। क्रोधादि कषायरूप

आमने-सामने लेना। क्षमा के सामने क्रोध; निर्मान के सामने मान; सन्तोष के सामने लोभ। ऐसे कषायरूप आत्मा न हो। विकार की क्रोध, मान, माया, लोभरूप से आत्मा न हो। अपने स्वभाव में स्थिर हो। वह (विकार) न हो, वह तो अविकार हो जायेगा। भगवान आत्मा अकषायस्वभाव स्वरूप है, अकषायस्वभाव स्वरूप है, ऐसे अकषायस्वभाव में अपने में स्थिर हो। अपने स्थिर हो, वही धर्म है। यह दशलक्षणी धर्म। समझ में आया? ऐसा जैनधर्म। यह जैनधर्म है।

यह भी शुद्ध चेतनारूप ही हुआ। कहते हैं, वह भी शुद्ध चेतना (स्वरूप है)। शुद्धस्वभाव भगवान आत्मा, त्रिकाल शुद्धभावरूप, उस शुद्ध का आश्रय लेकर जो शुद्ध चेतनारूप परिणमन हुआ, वह भी दशलक्षण धर्म शुद्ध चेतनारूप हुआ। दशलक्षण धर्म, वह शुद्ध चेतनारूप ही हुआ, उससे कोई दूसरी जाति नहीं है। समझ में आया? जैनधर्म कहाँ रहता होगा? मन्दिर में? पालीताणा में? या अन्यत्र? सम्मेदशिखर में? कहाँ रहता होगा दिलीप?

मुमुक्षु : अन्दर आत्मा में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में है। एकदम बोलता है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा, उसका दशलक्षणी धर्म-उत्तम क्षमा आदि। वह धर्म कहीं बाहर से नहीं आता। अन्दर में स्वभाव है, उसके आश्रय से उसका परिणमन होता है और नास्ति से कहें तो क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रतिकूलता आदि का उसमें अभाव है। समझ में आया? यह धर्म है। जैनधर्म। यह दशलक्षणी पर्व आत्मा की पर्याय में रहता है, कहीं बाहर में नहीं रहता। आहा..हा..! समझ में आया?

और, अब तीसरा, तीसरा धर्म दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने का तात्पर्य यह है कि.. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जो मोक्ष का मार्ग, वह धर्म। ऐसा कहा अर्थात् कि तीनों एक ज्ञानचेतना के ही परिणाम हैं,.. आहा..हा..! पहली कर्मचेतना, जो दया, दान, व्रत या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, राग, वह तो कर्मचेतना है, वह कहीं धर्म चेतना नहीं। आहा..! ज्ञानचेतना नहीं। क्या कहा? दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने का.. सम्यग्दर्शन वह क्या है? ज्ञानचेतना। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसकी अन्तर की एकाग्रता, ज्ञान का चेतना, ज्ञान में एकाग्र होना। ज्ञान का अनुभव होना, वह सम्यग्दर्शन,

ज्ञानचेतना है। सम्यग्ज्ञान, वह ज्ञानचेतना है और चारित्र—स्वरूप में स्थिरता, वह भी ज्ञान की एकाग्रतारूपी चारित्र है। समझ में आया ?

दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने का तात्पर्य यह है कि तीनों एक ज्ञानचेतना के ही परिणाम हैं,.. परिणाम हैं। पर्याय है न? धर्म तो परिणाम लेना है न? लड़कों का परिणाम आता है, वह होगा यह? लड़कों को नहीं आता? क्या परिणाम आया? यहाँ तो परिणाम अर्थात् उसकी पर्याय। उसकी वर्तमान दशा में जो सम्यक्शुद्ध चैतन्यभाव है, उसकी अन्तर श्रद्धा, वह भी ज्ञानचेतना के परिणाम हुए। राग चेतना और हर्ष चेतना के वे परिणाम नहीं। समझ में आया? इसलिए कर्मफल और कर्मचेतना नहीं। तीनों एक ज्ञानचेतना के ही परिणाम हैं,.. आहा..हा..!

भगवान आत्मा अकेला ज्ञानस्वभाव, असाधारण स्वभाव, वह वस्तु स्वयं। ज्ञानवस्तु, चेतनस्वभाव, उसकी अन्तर एकाग्रता, वह ज्ञानचेतना है। वह सम्यग्दर्शन ज्ञानचेतना है। ज्ञान की एकाग्रता की प्रतीति। सम्यग्ज्ञान भी ज्ञानचेतना है। ज्ञान का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष; और ज्ञान में रमणता, वह ज्ञान की रमणता, वह भी ज्ञानचेतना है। कहो, समझ में आया? **वही ज्ञानस्वभावरूप धर्म है.. लो! वही.. उसमें चेतना कहा था न? यह भी शुद्ध चेतनारूप ही हुआ। ऐसा कहा था। इसे कहा, वही ज्ञानस्वभावरूप धर्म है.. ज्ञानचेतना है न? ज्ञानस्वभावरूप धर्म है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव, उसमें एकाग्र हो, स्वसंमुख में एकाग्र हो तो परिणति / अवस्था प्रगटे, वह शुद्ध ज्ञानचेतना स्वभाव है। गजब बात! हिम्मतभाई! ऐसा था कहीं वहाँ? नहीं? आहा..हा..!**

तीन बातें हुईं। वस्तुस्वभाव, वह धर्म; उत्तम क्षमादि धर्म; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम, वह धर्म। इन तीन की व्याख्या हुई। अब एक व्याख्या—जीव की रक्षा, वह धर्म, यह बाकी रहा। ऐसा है। कहते हैं, जीव की रक्षा, वह धर्म। अर्थात् क्या?

जीव की रक्षा कहने से अपनी या पर की.. देखो! अपने में और पर में। जीव क्रोधादि कषायों के वश होकर अपनी या पर की पर्याय के विनाशरूप मरण तथा दुःख संक्लेश परिणाम न करे – ऐसा अपना स्वभाव.. देखो! आत्मा को आत्मा में शुभ और अशुभ विकल्प नहीं करना, यह जीव की रक्षा है।

मुमुक्षु : अशुभ की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों की। पर्याय के विनाशरूप मरण... कषायों के वश होकर। पर्याय के विनाशरूप मरण तथा दुःख संक्लेश परिणाम न करे... दोनों... दोनों। दुःख के संक्लेश परिणाम और पर्याय के विनाशरूप मरण कहा न? पर्याय में शुभ-अशुभ संकल्प है, वही पर्याय का मरण है। समझ में आया ?

भयंकर भावमरण आया है न? 'तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है।' आता है न श्रीमद् में। सोलह वर्ष में कहा है। 'तू क्यों भयंकर भावमरण....' अर्थात् शुद्ध चैतन्य के आनन्द का जीवन, ऐसा इसका जीवन है, उसमें राग और द्वेष की उत्पत्ति करना, वह जीव की शान्ति का मरण / व्यय होता है। उसका उत्पाद होना चाहिए, आनन्द और शान्ति का उत्पाद होना चाहिए। उसके बदले राग-द्वेष के परिणाम से उसका व्यय होता है, वह इसका मरण है। आहा..हा..! समझ में आया ?

जीव की रक्षा। भगवान आत्मा अपने स्वभाव की रक्षा और परजीव के स्वभाव की रक्षा। यह तो पर, पर का कर्ता है और आत्मा, आत्मा की करे। अपने या पर की क्रोधादि कषायों के वश होकर... विकल्प जो है, चाहे तो शुभ हो या अशुभराग हो, उसके वश होना, वही चैतन्य के शुद्ध निर्मल पर्याय का मरण है। हिम्मतभाई! समझ में आया ?

यह विचार आया था। इन्द्रों ने द्वारिका रची न? द्वारिका। जहाँ तीर्थकर बसते हैं, उसे रचते हैं, तब मणिरत्न के मन्दिर बनाते हैं। इसमें आयेगा। मणिरत्न के मन्दिर बनाते हैं। मन्दिर, घर। तीर्थकर आनेवाले हैं न! इसलिए देव पहले से आकर द्वारिका की रचना की। सोने के गढ़, मणिरत्न के कंगूरे। महल और दूसरे मकान। ऊँचे-ऊँचे। ऐसे ऊँचे... इसमें आयेगा। तीर्थकर होते हैं न!... अरिहन्त का निरूपण चौदह गाथा में किया। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव।इत्यादि।

'प्रथम तो गर्भ कल्याणक होता है। गर्भ में आने से छह महीने पहले इन्द्र का भेजा हुआ कुबेर जिस राजा की रानी के गर्भ में तीर्थकर आयेंगे, उसके नगर की शोभा करता है।' है? कितनी गाथा है? ४१। ४१ गाथा। इन्द्र आकर करे... यहाँ अपने तो यह लेना है। 'रानी के गर्भ में आयेंगे, रत्नमयी, स्वर्णमयी मन्दिर रचे।' मकान। द्वारिका को इन्द्रों ने रचा, हों! भगवान आनेवाले हैं। इसमें कथन इस प्रकार से है। उसमें आया, बलभद्र पूछते हैं, उसमें ऐसा लिखा है, बलभद्र पूछते हैं। यह द्वारिका नगरी... है तो इसकी स्थिति कितनी ?

ऐसा पूछते हैं।बलभद्र, भगवान को पूछते हैं, यह नगरी... समुद्र में नगरी की, उसकी स्थिति कितनी ? ऐसा आता है, हों !कहाँ आया ? भावपाहुड़ में आता है न ? कितनी गाथा ? ५०। बराबर है ५०वीं गाथा का भावार्थ है। देखो !

पहले की तरह इसकी कथा संक्षेप से इस प्रकार है—नौवें बलभद्र में श्री नेमिनाथ तीर्थकर से पूछा कि हे स्वामिन्! भावार्थ की पहली लाईन है भावार्थ की, भाई! वहाँ श्वेताम्बर में ऐसा आता है कि गजसुकुमार श्रीकृष्ण के भाई... इस द्वारिका के श्मशान में प्रभु! आपकी उपस्थिति... भगवान... ऐसा प्रश्न किया है। यहाँ यह पूछा है, देखो! बलभद्र ने श्री नेमिनाथ तीर्थकर से पूछा कि हे स्वामिन्! यह द्वारिकापुरी समुद्र में है, इसकी स्थिति कितने काल तक है ? तब भगवान ने कहा कि रोहिणी का भाई द्वीपायन तेरा मामा.... बलभद्र के मामा होते हैं। बारह वर्ष पीछे मद्य के निमित्त से क्रोध करके इस पुरी को दग्ध करेगा। इसमें ऐसा है। इसमें ऐसा लिया है,.... विषय लेते हुए मरकर अग्निकुमार हुए, उसने जलाया, ऐसा लिखा है उसमें, देखो! यहाँ तो स्पष्ट लिखा है, द्वारिका उसके कारण जली, ऐसा लिखा है। भगवान को बलभद्र ने कहा, इस द्वारिका की स्थिति बारह वर्ष की। सोने के गढ़ और मणिरत्न के कंगूरे... स्थिति बारह वर्ष की। आहा..हा.. ! मिट्टी के मकान नहीं थे, पत्थर के नहीं थे। नाशवान चीज़ है, बापू! क्या हो ? समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, अहो! जीव की रक्षा। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान के स्वभाववाला जिसका जीवन, अस्ति-टिकना है, ऐसे ज्ञान और आनन्द में टिके, वह जीव की रक्षा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह ऐसा मार्ग है। वीतराग परमात्मा... शुभभाव हुआ, वह भी जीव में शान्ति का मरण है, ऐसा कहते हैं। आहा.. ! जीव की रक्षा नहीं। आहा..हा.. ! भगवान आत्मा, पुण्य-पाप के विकल्प रहित आत्मा शुद्ध चैतन्य के आश्रय से निर्मल परिणति, अरागी-वीतरागी करे, वह जीव की अहिंसा और उसने जीव की रक्षा की। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। अरे ! दुनिया को कहाँ जाना है ?

यह अहिंसा है। राग की अनुत्पत्ति और वीतराग स्वभाव की उत्पत्ति, यह जीव की रक्षा है। भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। वीतराग—अकषायस्वभाव है। अकषाय-स्वभाव कहो या वीतरागस्वभाव कहो (दोनों एकार्थ हैं)। ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसमें

से वीतरागता की उत्पत्ति होना, शान्ति की-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की वीतरागी पर्याय की उत्पत्ति होना, वह जीव का स्वभाव, ऐसा रखा, उसका नाम जीव की रक्षा है। समझ में आया ? लोग एकान्त... एकान्त करते हैं... भगवान ! आहा..हा.. ! है, वह धर्म सत्य ही है, भाई ! तुझे खबर नहीं। अन्य रवेड़े चढ़ गया है न ? रवेड़े समझे न ? दूसरे (रास्ते)। इसलिए ये बातें इसे एकान्त लगती है। बापू ! वस्तु ही ऐसी है।

भगवान आत्मा शुद्धभाव, शुद्धभाव, शुद्धभाव ऐसा जो अन्दर स्वभाव है, उसमें से शुद्धभाव की परिणति, शक्ति में से व्यक्तता प्रगट हो, वह जीव की रक्षा है। वह भी शुद्ध चेतना परिणाम ही आया। आहा..हा.. ! समझ में आया ?कौन करता है ? ऐ.. ! यह वहाँ बहुत मन्दिर, मकान करता है। बाँकानेर में दरबार के साथ बैल की तरह जुड़ता था। यह और तुम दो व्यक्ति जाते थे न वहाँ ? मकान बनाने। वह भी होशियार था और यह भी... क्या कहलाता है ? इंजीनियर न ? इंजीनियर... इंजीनियर। दो व्यक्ति। वह भी ऐसा होशियार था, हों ! ऐसे हो और ऐसे हो।ऐसे दीनदयाला भिखारी जैसा है।

यहाँ तो कहते हैं, जीव की रक्षा कहने से ऐसा जानना कि जीव अपने और पर को विकारी कषाय के वश, पर्याय-निजपर्याय का विनाश होना, वह मरण है और उसका दुःख क्लेश परिणाम, वह न करना, ऐसा अपना स्वरूप। दुःख-क्लेश परिणाम, वह दुःख अर्थात् वह शुभ-अशुभभाव दोनों दुःख हैं और वे दोनों संक्लेश परिणाम ही हैं। संकल्प दुःख है न ! आहा..हा.. ! समझ में आया ? अरे ! इसे बैठा तो सही। बात को अन्दर से बैठा कि यह आत्मा वह क्या है ? उसका स्वभाव अन्दर महाप्रभु है। ऐसे अनन्त-अनन्त स्वभाव का धारक भगवान है। ऐसे स्वभाव की रक्षा रखना अर्थात् पर्याय में; वस्तु तो रक्षित है ही, परन्तु उसकी पर्याय में (रक्षा करना)। अवस्था में कहा न ? राग-द्वेष से मरण न होना, और राग-द्वेष रहित होकर स्वभाव के आश्रय से शान्ति, आनन्द की अवस्था का होना, वह जीव की रक्षा है। दुःखरूप न होना, आनन्दरूप होना, वह जीव की रक्षा है। क्योंकि जीव का स्वभाव आनन्द है। आहा..हा.. ! रतिभाई ! ऐसा मार्ग है।

जीव का स्वभाव जैसा है, वैसी परिणति में-पर्याय में उसे कार्य में / पर्याय में उसे कार्य। यह वस्तु ऐसी है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! हो, रागादि हो परन्तु वह वस्तु है। राग होता है भले शुभ, परन्तु वह शान्ति का तो मरण है। अपना अविकारी-अविकारी

स्वभाव... आहा..हा.. ! ज्ञानी को तो राग होने पर चोट लगती है। आता है न ? पंचाध्यायी में आता है। पंचाध्यायी में, चोट लगती है (ऐसा आता है)। धर्मी जीव को तो जहाँ राग होता है, वहाँ दुःख (लगता है)। पंचाध्यायी में है। दुःख... सन्धि का दृष्टान्त दिया है। सन्धिवा होता है न ? सांधे, सांधा (जोड़) दुःखे। पैर के जोड़, अंगुलियों के जोड़। आहा..हा.. ! जोड़ होते हैं न ? जड़ के जोड़। जहाँ जोड़ होते हैं.. हड्डियाँ रचित हैं न ? सांध है, वहाँ जोड़-जोड़ में दुःखे, ऐसा पाठ है। आहा..हा.. ! भान है, तथापि जहाँ... आहा..हा.. ! मचक खा जाता है जहाँ। राग और शुभ-अशुभभाव। सहमने की तरह दुःखी है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

ऐसे राग और दुःख और परलक्ष्यी वृत्तियों का उत्पन्न होना, वह मरण है। उससे रक्षा करना, उसका नाम जीवन है। आहा..हा.. ! कैसी व्याख्या ? यह तुम्हारे पढ़ने में पुस्तकों में आता होगा ? विद्यालय में नहीं आता ? वाड़ा में भी नहीं चलता। आहा..हा.. ! यह तो केवलज्ञानी का विद्यालय है। सर्वज्ञ होने का विद्यालय है। समझ में आया ? क्योंकि इसका स्वभाव ही सर्वज्ञस्वभाव है। उस स्वभाव की प्रतीति, ज्ञान में रमणता से रखना, उसका नाम जीव की रक्षा और उसका नाम धर्म है। आहा..हा.. ! वे कहते हैं पर की रक्षा (करो), परजीव की दया पालो, वह तुम्हारा धर्म है। कौन पाले ? भगवान ! पर की पर्याय कौन करे ? बहुत अन्तर। इसलिए लोगों को ऐसा लगे, हों ! क्या कहलाता है ? अमिलनसार जैसा लगे, अमिलनसार। अमिलनसार हैं, ये सोनगढ़वाले अमिलनसार हैं। किसी के साथ मेल नहीं खाता। यह कहते हैं कितने ही, हों ! अरे ! भगवान ! आत्मा के स्वभाव के साथ दूसरे को मेल-विचार, यह होता ही नहीं। आहा..हा.. !

ऐसे परिणाम नहीं करना, ऐसे क्रोधादि के परिणाम और दुःख के परिणाम नहीं करना। ऐसा अपना स्वभाव ही धर्म है। इस प्रकार शुद्ध द्रव्यार्थिकरूप निश्चयनय से साधा हुआ धर्म एक ही प्रकार है। चारों प्रकार एक ही प्रकार है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! द्रव्यार्थिकनय कहा, शुद्धद्रव्यार्थिक। अकेला द्रव्य जो शुद्ध चैतन्य, उसकी दृष्टि करके जो परिणाम उत्पन्न हो। ये चारों ही प्रकार एक ही रूप हैं। उनमें कोई दूसरा प्रकार (नहीं है)। उस व्यवहार के अनेक रूप स्थापना था न ? इसलिए एक रूप। साधा हुआ धर्म एक ही प्रकार है। आहा..हा.. !

तथा, व्यवहारनय पर्यायाश्रित है.. देखो! पहले में द्रव्यार्थिक लिया। वस्तु, वस्तु भगवान् द्रव्य, एक समय की पर्याय द्रव्य के आश्रय से होती है। व्यवहारनय पर्यायाश्रित है इसलिए भेदरूप है,.. भेद हुआ न? पर्याय एक अंश है, वह भेद है। त्रिकाली द्रव्य है, वह अभेद है। समझ में आया? व्यवहारनय पर्यायाश्रित है... अर्थात् क्या? आत्मा की एक समय की जो पर्याय है, वह व्यवहार हुआ। भेद पड़ा न? और त्रिकाली द्रव्य वस्तु ध्रुव है, वह द्रव्यार्थिक का विषय है। इसलिए जिस ज्ञान में द्रव्य प्रयोजन है, ध्येय का, और इसमें-व्यवहारनय में पर्याय का विषय है। पर्यायभेद का विषय है। आहा..हा..! इसलिए भेदरूप है,..

व्यवहारनय से विचार करें तो जीव के पर्यायरूप परिणाम अनेक प्रकार हैं.. आहा..हा..! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि के विकल्प अनेक प्रकार से पर्यायाश्रित हैं। इसलिए धर्म का भी अनेक प्रकार से वर्णन किया है। लो! व्यवहार से अनेक प्रकार के विकल्पों का वर्णन किया। दया और दान, व्रत और तप और भगवान् की भक्ति, यात्रा ऐसे विकल्प की पर्याय अनेक प्रकार, उसे व्यवहारधर्मरूप से कहा है।

वहाँ (१) प्रयोजनवश एकदेश का सर्वदेश से कथन किया जाये सो व्यवहार है,.. व्यवहार की व्याख्या की है। एक अंश है, निःशंक आदि एक गुण आया। जैसे अंजन चोर। भगवान् की श्रद्धा करके यहाँ काटा न? क्या कहलाता है? छींका... छींका.. छींका। निःशंक भगवान् के नाम से... वह समकित नहीं था, हों! व्यवहार समकित भी नहीं था, परन्तु निश्चय सम्यक्त्व का आरोप व्यवहार में देकर और व्यवहार समकित का आरोप एक अंश का देकर सर्व समकित है, ऐसा कह दिया। वह एकदेश में सर्वदेश का व्यवहार किया। उसे इतना, इतना है ऐसा वहाँ जानना, वह निश्चय है। एकदेश का आरोप करना कि समकिती, वह व्यवहार है। समझ में आया? यह आगे आयेगा।

वहाँ (१) प्रयोजनवश एकदेश का सर्वदेश से कथन किया जाये सो व्यवहार है, (२) अन्य वस्तु में अन्य का आरोपण अन्य के निमित्त से और प्रयोजनवश किया जाये वह भी व्यवहार है,... इसका स्पष्टीकरण आगे आता है, हों! इसका स्पष्टीकरण किया है, ५५ पृष्ठ पर स्पष्टीकरण है। ५५ पृष्ठ पर, ५६ पृष्ठ पर है (नयी आवृत्ति में ४४ पृष्ठ देखो)। व्यवहार नय के दो अर्थ हैं। प्रयोजन साधने को किसी वस्तु

को घट कहना, वह तो प्रयोजनाश्रित है। घट कहना। फिर चाहे तो प्याला हो, लकड़ी हो, उसे घट कहना। किसी अन्य वस्तु के निमित्त से घट में अवस्था हुई, उसको घटरूप कहना... घड़े में लाख चौपड़ी हो, मिट्टी लगायी हो। उसे भी पूरा घट कहने में आता है। वह निमित्ताश्रित है। इस प्रकार विवक्षित सर्व जीव-अजीव वस्तुओं पर लगाना। समझ में आया ?

अन्य वस्तु में अन्य का आरोपण अन्य के निमित्त से और प्रयोजनवश किया जाये, वह भी व्यवहार है,.. यहाँ तो धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है, उसे सिद्ध करने के लिये यह सब बात बताते हैं। समझ में आया ? व्यवहार से कथन किया हो, उसे उस प्रकार से जानना। निश्चय से स्व-आश्रित किया हो, उसे उस प्रकार से जानना। दोनों का खिचड़ा इकट्ठा नहीं करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह कल कहा था, नहीं ?सबेरे में। निश्चय और व्यवहारनय। निश्चय और व्यवहारनय के बिना कोई सूत्र का अर्थ नहीं हो सकता। शास्त्र में जितने शब्द और उनका अर्थ नय के बिना नहीं हो सकता, परन्तु यह किस नय का कथन है, इसके ज्ञान बिना एक ही हाँके कि यह भगवान ने कहा, इसलिए सच्चा। यह निश्चय है, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

इसलिए यहाँ कहते हैं... यह व्यवहार किसलिए बताते हैं ? कि यह व्यवहार इस प्रकार से होता है, इसलिए सच्चा है, ऐसा नहीं। उसे ऐसा व्यवहाररूप से जानने में, कहने में आता है। देव, गुरु-धर्म की श्रद्धा का राग, उसे धर्म कहे, समकित कहे, वह नहीं, परन्तु निश्चय स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ ऐसा विकल्प है, उसे सम्यक्त्व कहते हैं, ऐसा व्यवहार से कहा। वह ऐसा है नहीं, ऐसा जानना। समझ में आया ? आहा.. ! गजब बात यह।

वहाँ वस्तुस्वभाव कहने का तात्पर्य तो निर्विकार चेतना के शुद्धपरिणाम के साधकरूप, (३) मंदकषायरूप शुभ परिणाम है.. शुभ चाहिए। शुभपरिणाम। क्या कहा ? जो पहले कहा था कि वस्तुस्वभाव (वह) धर्म। वह धर्म आत्मा के शुद्ध चैतन्य के ज्ञान-दर्शन-आनन्द के परिणाम, वह धर्म है। ऐसा निश्चय धर्म हो, वहाँ निर्विकार चेतना के शुद्धपरिणाम.. बस। उसके साधनरूप वह व्यवहार कहा। साधक अर्थात् उस

प्रकार का वहाँ विकल्प उस जाति का होता है, उसे व्यवहार से साधक कहा है। ऐसा बताते हैं कि ऐसी चीज़ हो, वहाँ ऐसा होता है।

मंदकषायरूप शुभ परिणाम.. इस शुभभाव को भी धर्म व्यवहारनय से कहने में आता है। नहीं है, उसे कहना, उसका नाम व्यवहार है। आहा..हा..! ऐसी बात है। समझ में आया? एक ही लकड़ी से हाँके, ऐसा नहीं होता, कहते हैं। भाई! शुद्ध द्रव्य के आश्रय से जो दशा हो, वह सच्ची श्रद्धा और सच्चा ज्ञान और सच्चा भाव है, परन्तु उसके साथ-साथ में ऐसा भाव हो, उसे व्यवहारधर्म कहने में आता है। वह है, ऐसा कहने में आता है। उससे यह होता है और वह परमार्थ धर्म है, ऐसा व्यवहार नहीं कहता। समझ में आया? ऐसा निमित्तपना वहाँ होता है, उसका ज्ञान कराने के लिये उसे साधक और उसके साथ ऐसा भाव हो, उसका ज्ञान कराते हैं। अर्थ में बड़ा अन्तर है। विवाद उठाते हैं।

तथा जो बाह्यक्रियाएँ हैं, उन सभी को व्यवहारधर्म कहा जाता है। शुभभाव को व्यवहारधर्म कहने में आता है और देह की क्रिया हो, उसे व्यवहारधर्म का निमित्त है, इसलिए कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निश्चय तो शुद्ध भगवान आत्मा परम पवित्र आनन्द का धाम, उसके आश्रय से उसमें दृष्टि देकर जो शुद्धपरिणमन होता है, वह शुद्धचेतनापरिणाम, वह एक ही धर्म है। धर्म तो वह है। उसके साथ राग की मन्दता का शुभभाव व्यवहार साधकरूप से कहने में आवे, उसे भी धर्म कहा जाता है और उसके देह की क्रिया ऐसी ही होती है। भगवान की भक्ति के समय शुभभाव है, उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है। उस समय स्वाहा... ऐसे हाथ की क्रिया होती है। असद्भूतव्यवहारनय... असद्भूत उपचार है। वह तो अत्यन्त असद्भूत बाह्य।आहा..हा..!परन्तु वह निश्चय होता है, उसे ऐसा कहने में आता है। जहाँ निश्चय नहीं, उसे तो ऐसा व्यवहार शुभ और क्रिया को व्यवहार कहने में नहीं आता।

मुमुक्षु : व्यवहार को व्यवहार नहीं कहा जाता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जगे बिना व्यवहार कहना किसे ? समझ में आया ? निश्चय कहा न ? साधक है अर्थात् ? निश्चय शुद्ध चेतनापरिणाम है, ऐसा कहा न ? **शुद्धपरिणाम के साधकरूप,..** परिणाम है। ऐसा बताने में यह साधक है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं।देखो ! यहाँ तो निर्विकार चेतना के **शुद्धपरिणाम..** है। है न ? पण्डितजी !अष्टपाहुड़ रह

गया, वह रह गया, अभी तक। समझ में आया उसमें? वस्तुस्वभाव के साथ व्यवहार मिलाया। वस्तुस्वभाव का धर्म, उसके साथ व्यवहार की बात की। अब रत्नत्रय का धर्म, उसके साथ व्यवहार की बात करते हैं। समझ में आया?

रत्नत्रय का तात्पर्य स्वरूप के भेद दर्शन-ज्ञान-चारित्र.. अभेद सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। ध्रुव चैतन्य भगवान को अवलम्बन कर हुआ दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो निश्चय-सच्चा धर्म, सच्चा मोक्ष का मार्ग है परन्तु साथ में भेद दर्शन-ज्ञान-चारित्र.. भेदरूप दर्शन-ज्ञान, चारित्र विकल्प। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नवतत्त्व की श्रद्धा, जीवादि का व्यवहार ज्ञान और व्रतादि के विकल्प। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा उनके कारण बाह्य क्रियादिक हैं,.. तीन बातें ली हैं।

एक तो भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य, उसकी दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह सच्चा। उसके साथ व्यवहार का विकल्प उठे, वह व्यवहार। उसके साथ देह की क्रिया भी विनय की देव-गुरु के साथ वर्ते आदि, उस क्रिया को भी व्यवहार असद्भूतनय से धर्म कहने में आता है। कहो, सेठी! इसमें कितना लिखा है! ये पण्डित जयचन्दजी तुम्हारे गाँव के हैं। समझ में आया?

बाह्य क्रियादिक हैं, उन सभी को व्यवहार धर्म कहा जाता है। अब रहा अन्तिम।

(४) जीवों की दया कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोधादि मंदकषाय होने से.. लो, मन्द के शुभभाव हैं, हों! अपने या पर के मरण, दुःख, क्लेश आदि न करना;.. शुभभाव। वे न करना, वह निश्चय। जीवों की दया कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोधादि मंदकषाय होने से अपने या पर के मरण, दुःख, क्लेश आदि न करना; उसके साधक समस्त बाह्यक्रियादिक को धर्म कहा जाता है। मन्द भी धर्म, ऐसा शुभराग भी धर्म और बाह्यक्रिया वह धर्म। क्रोधादि मंदकषाय होने से.. शुद्धपरिणाम हैं, वह जीव की दया, वह निश्चय। यह व्यवहार दया। क्रोधादि मंदकषाय होने से अपने या पर के मरण, दुःख, क्लेश आदि न करना;.. व्यवहार, हों! यह व्यवहार। उसके साधक.. बाह्य क्रियादि। देह की क्रिया, वाणी की क्रिया। उसे भी व्यवहार से धर्म

कहने में आता है। काया, मन के परिणाम और शुद्धपरिणाम तीनों साथ में लिये हैं। समझ में आया ?

इसप्रकार जिनमत में निश्चय-व्यवहारनय से साधा हुआ धर्म कहा है। लो! वीतरागमार्ग में तो निश्चय से तो स्व का साधन, वह धर्म और साथ में विकल्प, निमित्त और क्रिया (होवे), उसे भी व्यवहार से धर्म, इस प्रकार जिनमत में कहा गया है। समझ में आया ?

वहाँ एकस्वरूप अनेकस्वरूप कहने में स्याद्वाद से विरोध नहीं आता,.. ऐसा कहते हैं। एक ओर कहना कि स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य, उसकी एकरूप श्रद्धा, ज्ञान, एकरूप दशा, वह धर्म और फिर विकल्प और अनेक प्रकार के आवें, वह भी व्यवहारधर्म। यह क्या? अनेकपना है, वह व्यवहार है; एकपना, वह निश्चय है। ऐसा वहाँ होता है, इसलिए चैतन्य में निश्चय को विरोध नहीं आता। साथ में होता है, रह सकता है। मिथ्यात्व का भाव साथ में रहे और समकित का भाव साथ में रहे, ऐसा यह नहीं है। यह तो स्वभाव के ऐसे विकल्पों की मर्यादा वहाँ रह सकती है। तथापि निश्चय के स्वरूप का भान भी वहाँ रह सकता है, इससे स्याद्वाद में दोनों में विरोध नहीं आता। पहला व्यवहार से कहा, यह निश्चय से कहा, इसलिए इसमें विरोध है नहीं।

मुमुक्षु : दोनों में सच्चा धर्म कौन सा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म यह निश्चय एक ही सच्चा। यह बात तो पहले की है। सच्चा तो एक ही है परन्तु आरोपित निमित्त से कथन व्यवहार को बतलाने के लिये यह बात भी शास्त्र में आती है। इसलिए यह विरोध नहीं है। धर्म की विरुद्ध बात है, वह पर्याय, परन्तु उस पर्याय के काल में निश्चयधर्म नहीं हो सकता, ऐसा नहीं है। एक ओर अनेकपना एकसाथ रह सकता है, इसमें विरोध नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ? विरोध नहीं है। कथञ्चित् विवक्षा से सर्व प्रमाणसिद्ध है। लो! ऐसे धर्म का मूल दर्शन कहा है,.. ऐसा निश्चय और व्यवहार, इन सब धर्म का मूल तो सम्यग्दर्शन है। इसकी विशेष व्याख्या आयेगी.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)